तात्पर्य

एक देश में स्थित रहकर सम्पूर्ण जगत् का दर्शन कोई नहीं कर सकता। बड़े से बड़ा वैज्ञानिक भी यह नहीं देख सकता कि ब्रह्माण्ड के अन्य अंचलों में क्या हो रहा है। किन्तु श्रीकृष्ण ने अर्जुन को ऐसी शक्ति प्रदान की है, जिससे वह भूत, वर्तमान, अथवा भविष्य की किसी भी घटना को इच्छानुसार देख सकता है। इस प्रकार श्रीकृष्ण के अनुग्रह से अर्जुन सर्वज्ञ हो गया है।

न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा।
दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम्।।८।।

न=नहीं; **तु**=किन्तु; **माम्**=मुझे; **शक्यसे द्रष्टुम्**=देख सकेगा; **अनेन**=इन; **एव**=ही; **स्वचक्षुषा**=अपने चर्म-चक्षुओं से; **दिव्यम्**=अलौकिक; **ददामि**=(मैं) देता हूँ; **ते**=तुझ को; **चक्षुः**=नेत्र; **पश्य**=देख; **मे**=मेरी; **योगम् ऐश्वरम्**=अचिन्त्य योग-शक्ति को।

अनुवाद

परन्तु अपने चर्म-चक्षुओं से तू मुझे नहीं देख सकेगा। इसलिए तुझे दिव्य-दृष्टि प्रदान करता हूँ, जिससे तू मेरी योगशक्ति और ऐश्वर्य को देख सके।।८।।

तात्पर्य

शुद्धभक्त द्विभुज-रूप के अतिरिक्त श्रीकृष्ण के अन्य किसी रूप को देखने की अभिलाषा नहीं रखता। भक्त को उनके विश्वरूप का दर्शन उन्हीं की कृपा से मिली दिव्य-दृष्टि से करना है, मन से नहीं। श्रीकृष्ण के विश्वरूप के दर्शनार्थ अर्जुन को अपनी दृष्टि बदलने को ही कहा गया है, चित्त को नहीं। श्रीकृष्ण के विश्वरूप की अधिक महत्ता नहीं है, जैसा अनुवर्ती श्लोकों से स्पष्ट हो जायेगा। तथापि, क्योंकि अर्जुन उसे देखने का अभिलाषी है, इसलिए श्रीभगवान् उसे वह दृष्टि दे रहे हैं, जिससे उस विश्वरूप का दर्शन हो सकता है।

श्रीकृष्ण के साथ यथार्थ रस-सम्बन्ध वाले भक्त प्रेममय रूपों के प्रति ही आकृष्ट होते हैं, ऐश्वर्यों के निरीश्वर प्रदर्शन से नहीं। श्रीकृष्ण के सहचर, सखा तथा माता-पिता यह कभी नहीं चाहते कि श्रीकृष्ण अपने ऐश्वर्य का प्रकाश करें। वे शुद्धप्रेम में डूबे रहते हैं और इतना भी नहीं जानते कि श्रीकृष्ण स्वयं भगवान् हैं। श्रीकृष्ण के साथ प्रेमरस का विनिमय करते हुए यह विस्मृति सी हो जाती है कि श्रीकृष्ण परमेश्वर हैं। श्रीमद्भागवत में कथन है कि वृन्दावन में श्रीकृष्ण के साथ क्रीड़ा करने में मग्न सभी बालक परम पुण्यात्मा हैं; बहुत जन्मों तक तपश्चर्या करने के बाद कहीं जाकर उन्हें श्रीकृष्ण के साथ क्रीड़ा करने का सुयोग मिला है। ये बालक नहीं जानते कि श्रीकृष्ण स्वयं भगवान् हैं; वे तो उन्हें अपना सखा ही मानते हैं। जहाँ परमपुरुष को महर्षिगण ब्रह्म मानते हैं और भक्त भगवान् मानते हैं, वहीं साधारण मनुष्य उन्हें माया का कार्य समझते हैं। वास्तव में विश्वरूप दर्शन से भक्त का कोई प्रयोजन नहीं है। अर्जुन तो